साप्ताहिक
Live not just breaTHE

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

Global School Of Excellence, Obedullaganj

वर्ष : 6, अंक : 50 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 4 अगस्त से 10 अगस्त 2021 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

बाढ़ और भारी बारिश से 65 साल में 1 लाख लोगों की मौत, 4 लाख करोड़ रुपए का नुकसान...

नई दिल्ली। भारत का लगभग 4 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल बाढ़ प्रभावित क्षेत्र है। देश में 1953 से लेकर 2018 के दौरान बाढ़ और भारी बारिश के कारण 1,09,374 लोगों की जान गई, जबकि 61,09,628 पशुओं की जान गई। अनुमान है कि इन 65 सालों के दौरान देश को लगभग 4,00,097 करोड़ रुपए का नुकसान हुआ। 17वीं लोकसभा के लिए संसद की स्थायी समिति (जल संसाधन) द्वारा दोनों सदनों में प्रस्तुत रिपोर्ट में यह जानकारी दी गई है। इस रिपोर्ट में कहा गया कि राष्ट्रीय बाढ़ आयोग का यह आंकड़ा बहुत प्रचंड है। हर साल बाढ़ से होने वाले भारी नुकसान के लिए खराब योजना, बाढ़ नियंत्रण नीतियों की असफलता, अधूरी तैयारियां और निष्प्रभावी आपदा प्रबंधन जिम्मेवार है।

स्थायी समिति ने कहा कि जिस तरह से हर साल बाढ़ का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। उसे देखते हुए अब केंद्र व राज्य सरकारें एक दूसरे पर दोष नहीं मढ़ सकते, जैसा कि समिति के संज्ञान में आया है। जबकि सभी को यह समझना चाहिए कि बाढ़ का प्रबंधन करना हरेक की जिम्मेवारी है। समिति ने जोर देकर कहा है कि एक दूसरे पर जिम्मेवारी को टालने का रवैया खत्म करना होगा। समिति ने सिफारिश की है कि केंद्रीय जल संसाधन मंत्रालय पूरे देश में बाढ़ प्रबंधन की जिम्मेवारी ले। स्थायी समिति ने केंद्र से भी कहा है कि जल शक्ति मंत्री की अध्यक्षता में एक स्थायी नेशनल इंटिग्रेटेड फ्लड मैनेजमेंट ग्रुप (एनआईएफएमजी) बनाया जाए, जिसमें हर राज्य के संबंधित मंत्रियों को भी शामिल किया जाए और साल में कम से एक कम बैठक अवश्य की जाए। कमेटी ने सिफारिश की है कि इस रिपोर्ट के संसद में पेश होने के तीन माह के भीतर इस ग्रुप की पहली बैठक बुलाई जाए। रिपोर्ट में कहा गया है कि अब समय आ गया है, जब केंद्र व राज्य सरकारें मिलकर बाढ़ से होने वाले नुकसान को कम करने की दिशा में काम करें। समिति ने एक इंटिग्रेटेड रिवर बेसन मैनेजमेंट प्लान बनाने का सुझाव दिया है, जिसमें सभी बाढ़ प्रभावित राज्यों के साथ-साथ पड़ोसी देशों को शामिल किया जाए, ताकि पड़ोसी देशों की नदियों के पानी का भी प्रबंधन किया जा सके। स्थायी समिति ने अपनी इस रिपोर्ट में कहा है कि जलवायु परिवर्तन की वजह से बारिश के पैटर्न में काफी बदलाव आया है। जहां बारिश के कुल दिनों में कमी आई है, वहीं एक साथ भारी बारिश की घटनाएं बढ़ी हैं। इसलिए अब बहुत जरूरी हो गया है कि योजनाकार बाढ़ नियंत्रण की रणनीति पर नए सिरे से काम करें। स्थायी समिति ने सरकार से कहा है कि डैम सेफ्टी बिल, रिवर बेसिन मैनेजमेंट बिल को जल्द से जल्द पारित कराया और साथ ही मौजूदा आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 को सही ढंग से लागू किया जाए। रिपोर्ट में कहा गया है कि अब तक कई राज्यों में फ्लड प्लेन जोनिंग को चिह्नित तक नहीं किया गया है। केंद्र सरकार ने फ्लड प्लेन जोनिंग कानून का मॉडल बिल राज्यों को भेजा था, लेकिन अब तक केवल मणिपुर, राजस्थान उत्तराखंड और जम्मू-कश्मीर में इस दिशा में काम किया गया है। हालांकि फ्लड प्लेन को चिह्नित करने का काम भी यहां पूरी तरह से नहीं किया गया है। लेकिन सबसे अधिक बाढ़ प्रभावित राज्यों उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, आसम और ओडिशा में यह कानून बनाने की दिशा में कोई भी काम नहीं किया गया है। दिलचस्प बात यह है कि जहां पिछले 65 सालों में बाढ़ की वजह से देश को लगभग 4 लाख करोड़ रुपए का नुकसान हुआ है, वहीं अगर बाढ़ प्रबंधन के मामले में केंद्र सरकार के बजट की बात की जाए तो जल संसाधन विभाग के सचिव ने स्थायी समिति को बताया कि बाढ़ प्रबंधन को लेकर मंत्रालय का कुल बजट मात्र 500 करोड़ रुपए का है। वहीं, अगर आपदा प्रबंधन की बात की जाए तो आम बजट 2021-22 में नेशनल डिजास्टर रिस्पोंस फोर्स के लिए 1209 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया।

बाढ़ को राष्ट्रीय आपदा घोषित करने का कोई प्रावधान नहीं

मुंबई। जानमाल को नुकसान पहुंचाने वाली प्राकृतिक आपदाओं के बाद राज्यों की ओर से अक्सर मांग उठती है कि इसे राष्ट्रीय आपदा घोषित किया जाए। बाढ़ के दौरान ऐसी मांग सबसे अधिक जोर पकड़ती है। लेकिन हैरानी की बात यह है कि किसी भी प्राकृतिक आपदा को राष्ट्रीय आपदा घोषित करने की कोई कानूनी प्रावधान नहीं है। इस बात की पुष्टि जल संसाधन पर बनी पुष्टि स्टैंडिंग कमिटी की रिपोर्ट से भी होती है। कमिटी ने जब जल संसाधन, नदी विकास एवं गंगा पुनरोद्धार विभाग से पूछा कि कब और किन परिस्थितियों में क्षेत्र में आई बाढ़ को राष्ट्रीय आपदा घोषित किया जाता है, तब विभाग का जवाब था, गृह मंत्रालय के मौजूदा राज्य आपदा प्रतिक्रिया कोष (एसडीआरएफ)/राष्ट्रीय आपदा प्रतिक्रिया कोष (एनडीआरएफ) योजना में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिससे बाढ़ समेत किसी आपदा को राष्ट्रीय आपदा घोषित किया जाए। विभाग ने यह जरूर बताया कि जब भी गंभीर प्रकृति की आपदा आती है तो वित्तीय सहायता दी जाती है। कमिटी को दिए लिखित जवाब में विभाग ने बताया, सभी बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में पूर्ण सुरक्षा मुहैया कराना व्यवहारिक और आर्थिक रूप से संभव नहीं है, इसलिए बाढ़ से होने वाले नुकसान को कम करने के लिए तर्कसंगत आर्थिक सुरक्षा दी जाती है।

मधुमक्खियों के विनाश का कारण बन रहे हैं कीटनाशक

दुनिया भर में परागणकों की प्रजातियां लगातार घट रही हैं, जोकि खाद्य सुरक्षा और प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के लिए एक चिंता का विषय है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार 75 प्रतिशत फसलें परागणकों पर निर्भर करती हैं। मानवजनित तनावों के चलते मधुमक्खियों की आबादी पर हानिकारक प्रभाव पड़ रहे हैं।

शोधकर्ताओं ने अब मधुमक्खियों पर मानवजनित तनावों का पता लगाया है। शोध के अनुसार, कृषि में उपयोग होने वाले कीटनाशकों के संपर्क में आने से मधुमक्खियों की मृत्यु दर में काफी वृद्धि हुई है। शोध में यह भी बताया गया है कि कीटनाशकों के खतरों को कम करके आंका गया है। मधुमक्खियां और अन्य परागणकर्ता फसलों के लिए महत्वपूर्ण हैं। दुनिया भर में कीटों की आबादी में हो रही भारी गिरावट से खाद्य सुरक्षा और प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के लिए गंभीर खतरा पैदा हो सकता है। पिछले 20 वर्षों में दर्जनों प्रकाशित अध्ययनों के एक नए विश्लेषण ने मधुमक्खी के व्यवहार पर कृषि में उपयोग हो रहे केमिकल का पता लगाया। जिसमें मधुमक्खी और कुपोषण के बीच प्रभाव को देखा गया - जैसे कि मधुमक्खियों के भोजन के लिये घूमना, उनकी याददाश्त, कॉलोनी प्रजनन और उनका स्वास्थ्य। शोधकर्ताओं ने पाया कि इन विभिन्न प्रकार के तनावों के चलते मधुमक्खियों पर उनका बुरा प्रभाव पड़ा, जिससे उनकी मृत्यु के आसार काफी बढ़ गए। अध्ययन में यह भी पाया गया कि कीटनाशकों के परस्पर क्रिया करने की आशंका होती है, जिसका अर्थ है कि उनका कुल प्रभाव उनके अपने प्रभावों के योग से अधिक होता है। ऑस्टिन में टेक्सास विश्वविद्यालय के सह-शोधकर्ता हैरी सिंक्लेयर ने कहा कई कृषि में उपयोग होने वाले केमिकल के परस्पर प्रभाव से मधुमक्खी मृत्यु दर में काफी वृद्धि होती है। अध्ययन के मुताबिक खतरे का मूल्यांकन मधुमक्खी मृत्यु दर पर मानवजनित तनावों के प्रभाव को कम करके आंका जा सकता है। शोधकर्ताओं ने कहा कि उनके परिणाम बताते हैं कि नियामक प्रक्रिया अपने वर्तमान स्वरूप में मधुमक्खियों को हानिकारक कृषि केमिकल के खतरों से पड़ने वाले असर से नहीं बचाती हैं। अध्ययन में कहा गया है कि केमिकल से पड़ने वाले असर का समाधान सही से नहीं किया गया है। कृषि कार्य के तहत मधुमक्खियों पर कई मानवजनित तनावों का असर पड़ता है। जिसके चलते मधुमक्खियों और उनकी परागण सेवाओं में निरंतर गिरावट आएगी, जिससे मानव और पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य को नुकसान होगा।

फ्रांस के नेशनल रिसर्च इंस्टीट्यूट फॉर एग्रीकल्चर, फूड एंड एनवायरनमेंट के एडम वानबर्गन ने कहा कि परागण करने वाले कीड़ों को कृषि से होने वाले खतरों का सामना करना पड़ता है, जिसमें कीटनाशी और कीटनाशकों जैसे केमिकल के साथ-साथ जंगली फूलों से पराग और रस की कमी भी शामिल है। प्रबंधित मधुमक्खियों के औद्योगिक पैमाने पर उपयोग से परजीवियों और बीमारियों के लिए परागणकों का खतरा भी बढ़ जाता है। यह नया विश्लेषण पुष्टि करता है कि खेती की जाने वाले वातावरण में मधुमक्खियों का सामना कृषि में उपयोग होने वाले अलग-अलग केमिकल से होता है, जो मधुमक्खियों की आबादी के लिए खतरा पैदा कर सकता है। उन्होंने कहा कि मधु मक्खियों पर पड़ने वाले प्रभाव पर एक सामान्य तौर पर गौर किया गया था, लेकिन अन्य परागणकों पर अधिक शोध करने की आवश्यकता है, जो इन तनावों पर अलग तरह से प्रतिक्रिया कर सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, मानव उपभोग के लिए फल और बीज पैदा करने वाली दुनिया की लगभग 75 प्रतिशत फसलें परागणकों पर निर्भर करती हैं, जिनमें कोको, कॉफी, बादाम और चेरी शामिल हैं। 2019 में वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला कि दुनिया भर में सभी कीट प्रजातियों में से लगभग आधी प्रजातियां घट रही हैं और एक तिहाई सदी के अंत तक पूरी तरह से गायब हो सकती हैं। मधुमक्खियों की छह प्रजातियों में से एक दुनिया में कहीं न कहीं क्षेत्रीय रूप से विलुप्त हो चुकी है। परागकणों के विलुप्त होने का मुख्य कारण निवास स्थान का नुकसान और कीटनाशकों का उपयोग माना जाता है। यह अध्ययन नेचर नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। नया विश्लेषण इस बात की पुष्टि करता है कि खेती की जाने वाले वातावरण में मधुमक्खियों का सामना करने वाले कृषि रसायनों का कॉकटेल मधुमक्खी आबादी के लिए जोखिम पैदा कर सकता है।

ग्रामीण भारत के लिए बाढ़ व सूखे से भी ज्यादा नुकसानदायक थी कोविड-19 की दूसरी लहर

मुजफ्फरपुर लीची के लिए मशहूर बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में आवागमन पर लगे प्रतिबंध के कारण व्यापारियों की गतिविधियां ठप रही। लीची की खरीद न हो पाने के कारण न केवल किसानों की आमदनी पर असर पड़ा बल्कि लीची को पैक करने के लिए लकड़ी के बॉक्स बनाने वाले हजारों कारीगरों का रोजगार भी प्रभावित हुआ महामारी का कर्व गांवों में कभी समतल नहीं हुआ।

कोरोनावायरस संक्रमण की दूसरी लहर के सुदूर इलाकों में पहुंचते ही विशेषज्ञ देश की लगभग 50 करोड़ से अधिक ग्रामीण आबादी के दुष्चक्र में फंसने की आशंका जता रहे हैं। पिछले एक साल से महामारी पूरी दुनिया को तबाह कर रही है और तब से ही ग्रामीण भारतीय, जो अधिकतर असंगठित मजदूर हैं और हर परिभाषा के हिसाब से गरीब हैं, को नियमित रोजगार नहीं मिला है। कोविड-19 की दूसरी लहर के दौरान जब ग्रामीण इलाकों में संक्रमण के मामले अधिक आ रहे हैं तो उनके लिए आर्थिक संकट और बढ़ गया है। साथ ही, चौमरी के इलाज पर हो रहे खर्च ने उनकी आमदनी व बचत को नुकसान पहुंचाया है। एक स्वतंत्र रिसर्च संस्थान सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी (सीएमआईई) के अनुसार, इस बार ग्रामीण इलाकों से भी नौकरियों के जाने और बेरोजगारी बढ़ने की बात सामने आ रही है, जबकि पिछले साल ऐसा नहीं हुआ था। सीएमआईई के ताजा आंकड़े बताते हैं कि पिछले साल देशव्यापी लॉकडाउन के बाद जून 2020 में राष्ट्रीय बेरोजगारी दर ऐतिहासिक स्तर पर थी, जो पहले कभी नहीं देखी गई। कोरोना की दूसरी लहर के चलते 16 मई 2021 को समाप्त सप्ताह के आंकड़े बताते हैं कि राष्ट्रीय बेरोजगारी दर जून 2020 के लगभग बराबर थी। लेकिन इस बार खास बात यह रही कि शहरी इलाकों में बेरोजगारी दर 14.71 फीसदी थी, जबकि ग्रामीण इलाकों में 14.34 फीसदी थी। मई में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी मासिक बुलेटिन में कहा गया, महामारी की वजह से श्रम भागीदारी दर में गिरावट आई है। यह 2019-20 में 42.7 प्रतिशत थी। अब यह गिरकर 39.9 फीसदी पहुंच चुकी है। बेरोजगारी दर के इस उच्च स्तर (खासकर ग्रामीण क्षेत्र में) को बड़ा परिवर्तन माना जा रहा है। जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली के अर्थशास्त्र के पूर्व प्रोफेसर और यूनिवर्सिटी ऑफ बाथ के सेंटर फॉर डेवलपमेंट के विजिटिंग प्रोफेसर संतोष मेहरोत्रा कहते हैं, 2017-18 में बेरोजगारी दर पिछले 45 साल के मुकाबले सबसे अधिक थी, लेकिन कोविड-19 ने इसे और बढ़ा दिया है। अलग-अलग अनुमान बताते हैं कि कोविड-19 की दूसरी लहर ने असंगठित क्षेत्र को सबसे अधिक प्रभावित किया है। मेहरोत्रा कहते हैं कि इस लहर में किसानों और खेतिहर मजदूरों के संक्रमित होने के कारण ग्रामीण सप्लाई चेन पर असर पड़ा, ऐसा पहली लहर के दौरान नहीं हुआ था। हालांकि इस बार देशव्यापी लॉकडाउन नहीं था, लेकिन सभी राज्यों ने आवागमन और गतिविधियों पर पाबंदी लगाई। पिछले साल की तरह सख्ती नहीं थी, लेकिन राज्यों ने अपने-अपने राज्य और जिलों की परिस्थितियों के हिसाब से पाबंदियां लगाईं। गौर करने वाली बात है कि लगभग 50 प्रतिशत भारतीयों को रोजगार देने वाले कृषि क्षेत्र ने कोविड-19 की पहली लहर में 3.5 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की थी, लेकिन कोविड की दूसरी लहर में इस पर बुरा असर देखने को मिल रहा है। जहां तक ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार की बात है तो लगभग 60 फीसदी लोग अब भी कृषि क्षेत्र पर निर्भर हैं। लेकिन यह कार्य बल ग्रामीण क्षेत्र की कुल आमदनी का केवल एक चौथाई ही कमा पाता है। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि कृषि क्षेत्र पर निर्भर आबादी की आमदनी काफी कम है। महामारी के इस दौर में रबी सीजन के दौरान ऐसा साफ तौर पर देखने में भी आ रहा है और आने वाले खरीफ सीजन में भी इसका असर देखा जा सकता है। किसानों ने बड़े उत्साह से रबी सीजन के फसलों की बुवाई की थी, लेकिन जैसे ही अप्रैल 2021 में इन फसलों की कटाई और बिक्री का समय आया, एक बार फिर से कोरोनावायरस संक्रमण तेजी से फैला और राज्यों ने अपने स्तर पर लॉकडाउन की कार्रवाई शुरू कर दी, इसके चलते मंडियां और थोक बाजार बंद हो गए और किसान अपनी फसल नहीं बेच पाए। परिवहन की व्यवस्था न होने के कारण लगभग सभी इलाकों में किसान अपनी फसल मंडियों तक नहीं पहुंच पाए। पिछले साल देशव्यापी लॉकडाउन था और पाबंदियां भी काफी सख्त थी, इसके बावजूद गांव की स्थानीय मंडियों में किसी तरह की पाबंदी नहीं थी। इसका कारण यह था कि ग्रामीण इलाकों में संक्रमण की दर बहुत ही कम थी और ग्रामीण अपना काम पूरी मुस्तैदी से कर पा रहे थे। गेहूं की सबसे अधिक खरीद करने वाले पंजाब और हरियाणा में गेहूं के उठान का काम भी पूरी तरह से हो गया था। लगभग यही स्थिति गेहूं उत्पादक राज्य मध्य प्रदेश उत्तर प्रदेश और राजस्थान में भी देखने को मिली।

जैव विविधता के तहत किस तरह हो जंगलों की निगरानी, शोधकर्ताओं ने दिखाई राह

बेंगलुरु। 1992 में संरक्षण और सतत विकास के लिए प्रतिबद्ध 150 से अधिक अंतरराष्ट्रीय नेताओं ने जैविक विविधता कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए थे। कन्वेंशन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नई वैश्विक जैव विविधता फ्रेमवर्क लगभग एक दशक में एक बार बनाए जाते हैं। प्रकृति को कई मायनों में मापना बहुत कठिन है, फिर भी शोधकर्ताओं ने इसके स्वास्थ्य को मापने और संरक्षण के लिए मानक बनाने के तरीकों की खोज में दशकों बिताए हैं। अब एक अंतरराष्ट्रीय टीम ने जैविक विविधता पर कन्वेंशन में 150 से अधिक देशों को वन पारिस्थितिकी तंत्र की निगरानी किस तरह की जाती है, इसमें मदद करने की उम्मीद जताई है। यह शोध मोंटाना स्टेट यूनिवर्सिटी के पारिस्थितिक विज्ञानी एंड्रयू हैनसेन की अगुवाई में किया गया है।

प्रोफेसर हैनसेन ने कहा चाहे आप किसान हो या सिंचाई करने वाले या शहर में पानी की आपूर्ति की देखरेख करने वाले कोई व्यक्ति ही क्यों न हो आप सभी प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर रहे हैं। प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन सभी परिस्थितियों को मापने के बारे में है। इसलिए इसकी अच्छी तरह से देखभाल करने के लिए इसे जानना जरूरी है। सोसाइटी फॉर कंजर्वेशन बायोलॉजी के जर्नल कंजर्वेशन लेटर्स में प्रकाशित एक पेपर 2020 के बाद ग्लोबल बायोडायवर्सिटी फ्रेमवर्क के अंदर फॉरेस्ट इकोसिस्टम इंटेग्रिटी की निगरानी जिसके प्रमुख अध्ययनकर्ता हैनसेन हैं। यह पेपर जैव विविधता पर कन्वेंशन के सदस्यों के बीच इसकी गिरावट को लेकर चर्चा से पहले एक योजनाबद्ध तरीके से नया वैश्विक जैव विविधता ढांचा बनाने की बात करता है। इसमें आने वाले दशकों में जैव विविधता लक्ष्यों को पूरा करने की योजना शामिल है। हैनसेन के अनुसार, पेपर उपग्रह के आंकड़ों का उपयोग करके दुनिया भर में वन पारिस्थितिकी प्रणालियों के स्वास्थ्य का आकलन करने के लिए नए दिशा निर्देश देता है। यह एक ऐसी विधि है जो पांच साल पहले संभव नहीं थी। पेपर में लिखित रूपरेखा पारिस्थितिकी तंत्र को बनाए रखने के विचार पर आधारित है, जो प्राकृतिक आवासों की गुणवत्ता का एक उपाय है। जंगलों में यह तीन चीजों पर आधारित होता है - वन संरचना, पारिस्थितिकी तंत्र का कार्य, पौधे और जानवरों की आबादी कितनी तेजी से बढ़ती है और पोषक तत्वों की स्थिति क्या है। पारिस्थितिकी तंत्र में प्रजातियों की संरचना या ये किस तरह रहती हैं। यहां बताते चलें कि संरचना उस पारिस्थितिकी तंत्र की उपयोगिता को निर्धारित करती है। हैनसेन ने कहा कि यह पानी है, यह आग है, यह आपदा के खतरे हैं, यह जंगल है जो सांस लेते हैं, यह फल, नट और लकड़ी के उत्पादक हैं। इन सभी दृश्यों और उपभोग के लिए वन्य जीवन है। यह कृषि के लिए पानी है इन सभी चीजों में पारिस्थितिकी अखंडता शामिल है। प्रस्तावित ढांचा देशों की निगरानी में मदद करने के तरीकों को बतलाता है। यह समय के साथ पारिस्थितिक तंत्र में किस तरह के बदलाव आ रहे हैं और राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उनकी सीमा में कितना परिवर्तन दिखाई दे रहा है। यह राष्ट्रों के लिए भूमि कवर, उत्पादकता, आग की घटनाओं और जंगल की सीमा तक पहुंचने के लिए आंकड़ों का उपयोग कर एक तरीका विकसित करेगा। यह बदलती जैव विविधता के मूल्यांकन करने में मदद करेगा, जो किसी प्रजाति या पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिति निर्धारित करने के लिए कम से कम आवश्यक माप है। 2030 और उससे आगे के लिए नए लक्ष्य निर्धारित करने में सम्मेलन की सर्वोच्च प्राथमिकता -प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के क्षेत्र, कनेक्टिविटी और अखंडता को बढ़ाना- है। यह दुनिया के जंगलों के स्वास्थ्य को मापने और मानव-निर्मित सीमाओं के पार उस स्वास्थ्य का प्रबंधन करने के तरीकों का अध्ययन करता है। यह प्रयास जल आपूर्ति और प्राकृतिक संसाधनों को बनाए रखने, कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को कम करने, मछली और वन्य जीवन को बनाए रखने और आग और बाढ़ को कम करने में मदद करेगा। हैनसेन ने कहा यह आने वाले दशक वैश्विक संरक्षण के लिए वास्तव में काफी महत्वपूर्ण है। अपने लक्ष्यों को पूरा करने की सफलता को लेकर, जैविक विविधता पर कन्वेंशन में अब प्रकृति को मापने के तरीके पर सहमत होना चाहिए। जिसे सदस्य देश अगले दशक तक हर साल लगातार पूरा कर सकते हैं। हैनसेन ने आगे जोड़ते हुए कहा कि यह पेपर ऐसा करने के बारे में जानने का एक तरीका बतलाता है। समृद्धी प्रणालियों के लिए इसी तरह के ढांचे का प्रस्ताव किया गया है, लेकिन किसी अन्य समूह ने वैश्विक स्तर पर वन पारिस्थितिकी तंत्र की अखंडता को मापने के लिए केवल एक प्रणाली नहीं बनाई है। उनकी उम्मीद है कि सम्मेलन तय करेगा कि ढांचा ठोस हो, माप के लिए एक मानक दृष्टिकोण बनाता हो और देशों को मार्गदर्शन प्रदान करने की क्षमता रखता हो।

ट्रैफिक के शोर से पक्षी छोड़ रहे हैं गाना-चहचहाना, प्रजनन पर भी पड़ा असर

जर्मनी बढ़ते ध्वनि प्रदूषण से पक्षियों का जीवन बेहद प्रभावित हो रहा है। उनमें प्रजनन की शक्ति घट रही है और साथ ही उनके व्यवहार में भी परिवर्तन आ रहा है। हाल ही में जारी एक रिपोर्ट में यह जानकारी दी गई है। यह अध्ययन जर्मनी के मैक्स प्लैंक इंस्टीट्यूट फॉर ऑर्निथोलॉजी के शोधार्थियों ने किया है। उन्होंने जेब्रा फिंच नाम के पक्षी पर अध्ययन किया और पाया कि ट्रैफिक के शोर से उनके रक्त में सामान्य ग्लूकोकार्टिकोइड प्रोफाइल में कमी हुई और पक्षियों के बच्चों का आकार भी सामान्य चूजों से छोटा था। अध्ययन में दावा किया गया है कि ट्रैफिक के शोर की वजह से पक्षियों के गाने-चहचहाने पर भी फर्क पड़ता है।

यह अध्ययन कंजर्वेशन फिजियोलॉजी नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। अध्ययन में पक्षियों के दो समूह को शामिल किया गया। इनमें एक समूह वह था, जो जर्मनी के राज्य बावरिया की राजधानी म्युनिख के एक शोर भरे इलाके में रहता है, जबकि दूसरा समूह शांत इलाके में रहता है। यह अध्ययन पक्षियों के प्रजनन काल के दौरान किया गया। जारी रिपोर्ट में कहा गया है कि पहली प्रजनन अवधि के अंत के कुछ समय बाद दोनों समूहों के समान जोड़ों के लिए शोर की स्थिति बदल दी गई। शोधकर्ताओं ने दोनों परिस्थितियों में प्रजनन अवधि के दौरान, पहले और बाद में हार्मोन में तनाव के स्तर को दर्ज किया। इसके अलावा, उन्होंने (इम्यून फंक्शन) प्रतिरक्षा कार्य और प्रजनन की सफलता के साथ-साथ चूजों की वृद्धि दर को भी देखा। उन्होंने पाया कि जब वे शांत वातावरण में प्रजनन कर रहे थे, तब पक्षियों के खून में कॉर्टिकोस्टेरॉन का स्तर ट्रैफिक के शोर में प्रजनन कर रहे पक्षियों की तुलना में कम था। यह आश्चर्यजनक था क्योंकि तनाव अक्सर कॉर्टिकोस्टेरॉन के उच्च स्तर का परिणाम होता है, एक हार्मोन जो तनावपूर्ण अनुभवों के दौरान चयापचय क्रिया में शामिल होता है। प्रमुख अध्ययनकर्ता सू एन्नी जोलिंगर कहते हैं, शांत वातावरण में प्रजनन करने वाले पक्षियों में, प्रजनन के पूरे मौसम में उनका आधारभूत कॉर्टिकोस्टेरॉन कम रहता है। इससे पता चलता है कि जिन पक्षियों को शोर में रहने की आदत नहीं थी उनके प्रजनन चक्र के दौरान उनके हार्मोन का स्तर ऊपर-नीचे होता है अर्थात असामान्य पाया गया था। वहीं इसके विपरीत जो शांत वातावरण में इस प्रक्रिया से गुजरते हैं उनके हार्मोन का स्तर सामान्य पाया गया था। जिन चूजों के माता-पिता ट्रैफिक के शोर के संपर्क में थे, उनके चूजे शांत वातावरण में रहने वाले माता-पिता की तुलना में छोटे थे। हालांकि, एक बार शोरगुल की स्थिति में रह रहे चूजों के बड़े होकर घोंसला छोड़ देने के पश्चात, वे फिर शांत जगहों पर घोंसले बनाने में कामयाब रहते हैं। हालांकि, शोधकर्ता ने संतानों पर पड़ने वाले दीर्घकालिक प्रभावों को नहीं लिया है।

जंगलों के कटने और जलवायु परिवर्तन की वजह से फैल रही है जूनोटिक बीमारियां

मोहाली। आज वनों और वन्यजीवों के जीवन में जरूरत से ज्यादा दखलअंदाजी और वनों की कटाई, निवास स्थान के नुकसान की वजह से वायरस फैलने के आसार बढ़ गए है। वन्यजीवों से लोगों में रोग फैलाने वाले वायरस का पूर्वानुमान लगाने और भविष्य में महामारियों पर लगाम लगाने के लिए, वन्यजीवों से रोग के खतरे सबसे अधिक कहां है यह समझना महत्वपूर्ण है। नीदरलैंड में वैगनिंगन यूनिवर्सिटी एंड रिसर्च (डब्ल्यूयूआर) की अगुवाई में शोधकर्ताओं की एक टीम ने बताया कि स्तनपायी जैव विविधता वन्यजीवों की बीमारी के खतरों को बढ़ाने वाला एक महत्वपूर्ण तंत्र है। उन्होंने दुनिया भर में 4466 स्तनपायी प्रजातियों के बारे में पता लगाया जो बहुत अधिक संख्या में फैले थे। उन्होंने इन प्रजातियों के आंकड़ों का विश्लेषण करके रोग के खतरों की पहचान की। स्तनधारी जीवों से रोग फैलाने वाले वायरस होते है जिनसे लोगों में रोग फैलता है। रोग फैलने की इस प्रक्रिया को जूनोटिक कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि जानवरों से ही लोगों में सार्स-सीओवी-2 वायरस फैला, जिसकी वजह से पूरी दुनिया कोविड-19 महामारी का शिकार है।

शोधकर्ताओं ने पाया कि स्तनपायी में बढ़ोतरी और इनमें स्थानीय आधार पर भिन्नता वन्यजीव रोग के खतरे को बढ़ाने में अहम भूमिका निभाती है। अध्ययनकर्ता मिंगिंग वांग कहते है कि सभी स्तनपायी प्रजातियों में से एक चौथाई के विलुप्त होने के खतरे के साथ, हमें तत्काल यह समझने की आवश्यकता है कि जैव विविधता का नुकसान जूनोटिक रोग के जोखिम को कैसे प्रभावित करता है। उन्होंने और उनके सहयोगियों ने दुनिया भर में रहने वाले स्थलीय स्तनपायी के मॉडल के लिए सबसे पहले जलवायु और उनके पसंदीदा आवास, शरीर का द्रव्यमान और स्तनधारियों के आहार पर जानकारी का उपयोग किया। किस प्रजाति के कितने जानवर एक साथ रहते है और कहां रहते है? इन चीजों के आधार पर, शोधकर्ताओं ने महामारी विज्ञान पैरामीटर आर-नॉट के पारिस्थितिक संस्करण का उपयोग करके रोग के खतरे की गणना की। यह आबादी के स्तर पर आर-नॉट कई मेजबानों को संक्रमित करने वाले रोगजनकों के लिए मूल प्रजनन संख्या का प्रतिनिधित्व करता है। इस दृष्टिकोण को तब रोग के खतरे का पूर्वानुमान लगाने के लिए बढ़ाया गया था। परिणामों से पता चलता है कि उष्णकटिबंधीय इलाकों में रोग फैलने की सबसे अधिक आशंका है, क्योंकि यहां जैव विविधता बहुत अधिक है, लेकिन इसमें जोखिम भरे समशीतोष्ण क्षेत्र भी शामिल थे। भूमध्यरेखीय उष्ण कटिबंध और यूरोप, उत्तरी अमेरिका और एशिया के तापमान के पतन पर निर्भर बीमारियों का जोखिम अधिक था, जबकि उत्तरी अमेरिका और यूरेशिया के उत्तरी भागों और ओशिनिया में बार-बार होने वाली बीमारियों का जोखिम अधिक था। ये पूर्वानुमान बीमारी के प्रकोप के पिछले वैश्विक पैटर्न के साथ अच्छी तरह फिट बैठते हैं। हालांकि वन्य जीव पारिस्थितिकी विद केविन मैटसन के अनुसार वन्य जीव से नई बीमारियों के उद्भव के मामले में लोग अक्सर उष्णकटिबंधीय इलाकों को जोखिम भरा मानते हैं। लेकिन हमारे पूर्वानुमान इस संभावना को उजागर करते है कि उष्णकटिबंधीय इलाकों के बाहर भी नए प्रकोप हो सकते है। उन्होंने आगे बताया कि एक कारण यह भी हो सकता है कि समशीतोष्ण क्षेत्रों में कुछ स्तनधारी, विशेष रूप से कतरने वाले जानवर जैसे चूहा गिलहरी आदि में, मेजबान प्रजातियों के बीच कुछ वायरस एक दूसरे में फैल जाते है। यह अध्ययन ग्लोबल चेंज बायोलॉजी नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। निवास स्थान के नुकसान, जलवायु परिवर्तन और अन्य वैश्विक ताकतों के कारण चल रहे जैव विविधता संकट का सामना करते हुए, शोधकर्ताओं ने यह भी सोचा कि आने वाले दशकों में वन्य जीव रोग का खतरा कैसे बदल सकता है। ऐसा करने के लिए, उन्होंने दो अलग-अलग रास्तों के तहत प्रत्याशित पर्यावरणीय परिवर्तनों को शामिल करने के लिए अपने मॉडल का विस्तार किया। जिसमें पहला भविष्य के अपेक्षाकृत गुलाबी अथवा आशावादी दृष्टिकोण के साथ और दूसरा, अधिक निराशावादी था। इससे यह पता चला है कि प्रजातियों को बीमारी के जोखिम को प्रभावित करने के लिए स्थानीय रूप से विलुप्त होने की जरूरत नहीं है, जैसा कि अक्सर माना जाता है। रोग के खतरे में पर्याप्त परिवर्तन किसी भी प्रजाति के विलुप्त होने के बिना हो सकता है, इसके बजाय सापेक्ष बहुतायत में परिवर्तन से प्रभावित होता है। बड़ी प्रजातियां छोटी प्रजातियों की बहुतायत को नियंत्रित कर सकती है, जिसका अर्थ है कि हमें इस बात पर विचार करना होगा कि बड़ी प्रजातियों का संरक्षण एक महत्वपूर्ण नियंत्रण उपाय के रूप में काम कर सकता है। इस तरह के निष्कर्ष हमें जैव विविधता और बीमारी के बीच संबंधों की बारीकियों और जटिलता को स्वीकार करने के लिए मजबूर करते है। शोधकर्ता डी बोअर ने कहा यह रोमांचक है कि हमारे पूर्वानुमान बीमारी के प्रकोप के पिछले वैश्विक पैटर्न के साथ इतनी अच्छी तरह फिट बैठते है। इससे पता चलता है कि हमने यह समझने की सही दिशा में एक कदम उठाया है कि रोगों के और जैव विविधता के बीच संबंध वास्तव में कैसे काम करता है।

मध्यप्रदेश वृक्षारोपण प्रोत्साहन विधेयक-2021, स्टेक होल्डर्स एक महीने में अपने सुझाव प्रस्तुत कर सकेंगे

इंदौर प्रदेश में निजी भूमि पर वृक्षारोपण को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से प्रस्तावित मध्यप्रदेश वृक्षारोपण प्रोत्साहन विधेयक-2021'' पर सभी स्टेक होल्डर्स से एक महीने में सुझाव मांगे गये हैं। यह योजना नगरपालिक क्षेत्रों को छोड़कर पूरे प्रदेश में लागू होगी। विधेयक में प्रावधान किया गया है कि उत्पादक द्वारा रोपे गये पौधों के संवर्धन और प्रबंधन की पद्धति अपनी मर्जी से जैसे उचित समझे अपनाया जा सकेगा। उत्पादक संबंधित ग्राम पंचायत के भीतर किसी भी स्थान पर, जिसमें वृक्षारोपण किया गया, वहीं काष्ठ की टाल स्थापित कर सकेगा। काष्ठ टाल में इमारती लकड़ी की प्र-संस्करण इकाई स्थापित करने के लिये सशर्त सुविधा दी जायेगी। इस विधेयक में आदिवासी वर्गों के हित संरक्षण को ध्यान में रखते हुए उनके खेतों में खड़े वृक्षों को काटने और बिक्री के नियम यथावत रखे गये हैं। विनिर्दिष्ट वनोपज सागौन और साल का शासकीय ई-पोर्टल के माध्यम से खेत या टाल से ही बेचने और स्वयं बोली स्वीकार करने और सीधे भुगतान लेने की छूट का प्रावधान भी रखा गया है। सागौन एवं साल विनिर्दिष्ट प्रजाति के वृक्षों से प्राप्त काष्ठ के परिवहन के लिये अनुज्ञा-पत्र जरूरी होगा। शेष प्रजाति के वृक्षों के परिवहन अनुज्ञा-पत्र से छूट रहेगी, परंतु हितग्राही यदि चाहे तो स्वयं टीपी पोर्टल से निकाल सकेगा। अपराध नियंत्रण की दृष्टि से वन सीमा से लगी ग्राम पंचायतों से काष्ठ परिवहन के लिये अनुज्ञा-पत्र लेना अनिवार्य होगा। आमजन के लिये प्रस्तावित मध्यप्रदेश वृक्षारोपण विधेयक-2021 का प्रारूप और वन विभाग की वेबसाइट पर उपलब्ध है।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता के लिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 पेकी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) में मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008